02 नवम्बर 2011, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-61 / 2009-11

जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के व्याख्यान देखिये

जी-जागरण पर

प्रतिदिन प्रातः 6.40 से 7.00 बजे तक

वर्ष : 34, अंक : 15 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये

नवम्बर (प्रथम), 2011 (वीर नि. संवत्-2538) सह-सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

भगवान महावीर निर्वाणोत्सव सम्पन्न

1. देवलाली (नासिक) : यहाँ कहाननगर में स्व. श्रीमती मधुकान्ताबेन रमेशभाई मेहता परिवार की ओर से भगवान महावीरस्वामी के 2538 वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर दिनांक 23 से 27 अक्टूबर तक विधान एवं व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के समयसार के संवर अधिकार पर मार्मिक प्रवचनों के अतिरिक्त ब्र. हेमचन्दजी हेम, पण्डित अनिलकुमारजी शास्त्री भिण्ड एवं पण्डित अभिनन्दनजी खनियांधाना के व्याख्यानों का लाभ मिला।

इस अवसर पर आयोजित पंचपरमेष्ठी विधान संबंधी सभी कार्य ब्र. अभिनन्दनकुमारजी खनियांधाना एवं पण्डित दीपकजी धवल ने सम्पन्न कराये।

दिनांक 26 अक्टूबर को प्रातः भगवान महावीरस्वामी के निर्वाण कल्याणक पर पूजन-विधान के उपरान्त निर्वाणलाडू समर्पित किया गया।

इसी प्रसंग पर **प्रतीक्षालय का उद्घाटन** श्री दिलीपकुमार उम्मेदलाल शाह परिवार राजकोट द्वारा तथा **विद्वत्गण भोजनालय का नामकरण** श्रीमती रंभाबेन पोपटलाल वोरा परिवार मुम्बई द्वारा किया गया।

2. मंगलायतन (अलीगढ) : यहाँ श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट अलीगढ एवं श्री कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान उज्जैन के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित श्री महावीर निर्वाणोत्सव एवं आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर सानन्द सम्पन्न हुआ।

इस प्रसंग पर प्रतिदिन गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन के अतिरिक्त पण्डित विमलदादा झांझरी उज्जैन, पण्डित प्रदीपजी झांझरी उज्जैन, पण्डित अभयजी शास्त्री देवलाली, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी जैन आगरा, पण्डित राकेशजी शास्त्री नागपुर, पण्डित शांतिलालजी महिदपुर, पण्डित देवेन्द्रजी मंगलायतन एवं पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन के प्रवचनों का लाभ मिला।

दिनांक 26 अक्टूबर को प्रातः कैलाशपर्वत पर स्थित भगवान आदिनाथ के पादमूल में भगवान महावीर प्रभु के जिनबिम्ब की स्थापना करके निर्वाणोत्सव का कार्यक्रम अत्यन्त भक्तिभाव एवं उल्लासमय वातावरण में सम्पन्न हुआ। सैंकड़ों की संख्या में उपस्थित साधर्मीजनों ने भगवान के निर्वाण कल्याणक की पूजन करके प्रसन्नता के प्रतीकस्वरूप श्रीफल अर्पित किया।

पुरुषार्थमूर्ति का जन्म शताब्दी वर्ष

मंगलायतन (अलीगढ) : यहाँ गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अनन्य शिष्य पुरुषार्थमूर्ति श्री निहालभाई सौगानी के जन्म शताब्दी महोत्सव का कार्यक्रम सौगानी परिवार कोलकाता/मुम्बई के सौजन्य से दिनांक 21 से 23 अक्टूबर तक हर्षोल्लासपूर्वक मनाया गया।

कार्यक्रम का शुभारम्भ गुरुदेवश्री के नैरोबी (अफ्रीका) में हुये वीडियो प्रवचन से हुआ।

इस अवसर पर तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की अध्यक्षता में सभा का आयोजन किया गया, जिसमें उपस्थित विद्वत्वर्ग एवं श्रेष्ठीवर्ग मंचासीन थे। इस प्रसंग पर **गुरुदेवश्री के चित्र का अनावरण** श्री रमेशचन्द, नरेशचन्द, अनिलकुमार, अशोककुमार एवं सिद्धार्थ सौगानी कोलकाता-मुम्बई ने तथा **श्री सौगानीजी के चित्र का अनावरण** श्रीमती रेखाबेन निमेष शाह, कविताबेन केतन शाह, दीपाबेन हितेन सेठ, पारुलबेन अनुज सेठ द्वारा किया गया। त्रि-दिवसीय कार्यक्रम के उद्घाटन के प्रसंग पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने सौगानीजी के तीव्र पुरुषार्थी व्यक्तित्व पर अनेक पहलुओं से प्रकाश डाला।

सभा के पूर्व जिनेन्द्र शोभायात्रा निकाली गई तथा ध्वजारोहण श्रीमती अचरजदेवी निहालचन्दजी ओसवाल परिवार जयपुर के करकमलों से हुआ।

आयोजन में डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रासंगिक प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित विमलचन्दजी झांझरी उज्जैन, बाल ब्र. हेमन्तभाई गाँधी सोनगढ, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी जैन आगरा, पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी उज्जैन, डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर, पण्डित देवेन्द्रकुमारजी जैन मंगलायतन, पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन, पण्डित बाबूभाई मेहता फतेहपुर एवं श्री पवनजी जैन मंगलायतन का लाभ मिला।

कार्यक्रम में द्रव्यदृष्टि प्रकाश के आधार से गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें पण्डित विमलदादा झांझरी उज्जैन, पण्डित प्रदीपजी झांझरी उज्जैन, डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर, पण्डित अरहंतजी झांझरी उज्जैन, पण्डित अजितजी अचल ग्वालियर, पण्डित बाबूभाई मेहता फतेहपुर, पण्डित शांतिलालजी महिदपुर, पण्डित तेजमलजी गंगवाल इन्दौर, पण्डित राजकुमारजी बांसवाडा, पण्डित अजितजी अलवर, पण्डित चिरंजीलालजी पाटनी, श्री पदमचन्दजी सर्राफ आगरा एवं श्री रमेशचन्दजी सौगानी कोलकाता ने अपने विचार व्यक्त किये।

रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सौगानीजी के जीवन पर निर्मित वीडियो के अतिरिक्त धन्य पुरुषार्थी, दृष्टि वैभव आदि अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये।

सम्पादकीय – 67

पंचास्तिकाय : अनुशीलन

– पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

गाथा– १०६

विगत गाथा में मंगलाचरण करके नवपदार्थ कहने की प्रतिज्ञा की है।

अब प्रस्तुत गाथा सम्यक्त्व और ज्ञान सहित मोक्षमार्ग का कथन करते हैं। मूल गाथा इसप्रकार है –

सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं।
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं।।१०६।।

(हरिगीत)

सम्यक्त्व ज्ञान समेत चारित राग–द्वेष विहीन जो।
मुक्ति का मारग कहा भवि जीव हित जिनदेव ने।।१०६।।

सम्यक्त्व और ज्ञान से सहित एवं राग–द्वेष रहित चारित्रवंत भव्य जीवों को मोक्ष का मार्ग होता है।

टीका में आचार्यश्री अमृतचन्द्र कहते हैं कि – सम्यक्त्व और ज्ञानयुक्त तथा राग–द्वेष रहित चारित्र ही मोक्ष का मार्ग है। यह मोक्ष मार्ग भव्यों को, लब्धबुद्धियों को तथा क्षीण कषायपने में ही होता है।

इसके विपरीत असम्यक्त्व अवस्था में अज्ञान, अचारित्र, राग–द्वेष सहित अवस्था में और बन्ध मार्गवालों को, अभव्यों एवं कषायवानों को नहीं होता है। इसी भाव को कवि हीरानन्दजी काव्य में कहते हैं –

(दोहा)

जो चारित समकित सहित, राग–दोस–परिहीन।
सो चारित सिव पंथ है, भवि आतम आधीन।।५।।

(सवैया इकतीसा)

सम्यक् सरूप–दृष्टि ज्ञानयुत होइ दृष्टि,
चारित यथासरूप मोख पंथ साँचा है।
राग–दोष–मोह परनाली मूल ही तैं जाय,
निर्विकार चिदानन्द आप ही में राचा है।।
ऐसा परिनाम भव्य आतमा प्रगट होय,
खोय मिथ्या मेल सारा सुद्धभाव जाँचा है।
ऐसे निजरूप पावै मोख कों सिधावै जीव,
और भाँति जाने ही तैं लोकनाच नाचा है।।६।।

(दोहा)

दरसन ज्ञान चरन कहे, सिवमारग विवहार।
एकरूप चेतन लसै, निहचै मोख–विहार।।७।।

जो चारित्र राग–द्वेष से रहित और सम्यग्दर्शन सहित है, वह चारित्र मोक्ष का मार्ग है, उसे भव्य जीव प्राप्त करते हैं।

आगे सवैया एवं दोहे में सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र को मुक्तिमार्ग कहा है। ऐसी स्थिति में मोह–राग–द्वेष समूल नष्ट हो जाते हैं तथा निर्विकारी शुद्ध आत्मा स्वरूप में मग्न हो जाता है। ऐसे परिणाम भव्य जीवों को प्रगट होते हैं। इसतरह वे निजस्वरूप को प्राप्तकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं। व्यवहार से सम्यक्दर्शन ज्ञान–चारित्र की एकता मोक्षमार्ग है तथा निश्चय से निज स्वरूप में लीनता मोक्षमार्ग है।

अब इसी के भाव को गुरुदेव श्री कानजीस्वामी स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि – सम्यक्त्व अर्थात् सात तत्त्वों के यथार्थश्रद्धान और वस्तुतत्व के ही यथार्थज्ञान सहित जो आचरण है, वह मोक्ष का मार्ग है।

यहाँ यथार्थ श्रद्धाज्ञान सहित सम्यक्चारित्र को मोक्षमार्ग कहा है।

भावार्थ में स्वामीजी कहते हैं कि – स्वरूप का आचरण, स्वभाव का अनुष्ठान, स्वभाव में रमणता चारित्र है तथा ऐसा चारित्र सम्यक्दर्शन ज्ञान पूर्वक ही होता है। स्वभाव की अन्तर्दृष्टि बिना चारित्र प्रगट नहीं होता।

कोई कहे सम्यग्दर्शन का तो पता नहीं चलता, उसे कैसे जाने?

उससे कहते हैं कि – आत्मा में एक प्रमेयत्व नाम का गुण है, जहाँ श्रद्धा की पर्याय है, वहीं प्रमेयत्व गुण भी है। उसके कारण ज्ञानी को अपने श्रद्धान को जानने की योग्यता है। तथा ज्ञान ज्ञेयों को जान लेता है – ऐसा ज्ञान का स्वभाव है। अज्ञानी को उसका ज्ञान नहीं है, इसकारण उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। आत्मद्रव्य के ज्ञान बिना राग एवं स्वभाव के बीच, विवेक बिना स्वभाव में रमणता होती ही नहीं है।

स्वभाव की यथार्थदृष्टि के बिना राग घटता ही नहीं है। जिन मुनिराजों को आत्मा का भान वर्तता है, उन मुनियों को सत् की स्थापना का तथा असत् के निषेध का विकल्प ही नहीं उठता। वही उनकी समता है। शास्त्र लिखने का विकल्प भी चारित्र नहीं है, क्योंकि वह विकल्प समताभाव रूप नहीं है। अकषाय परिणति ही चारित्र है, वही मोक्ष का कारण है। ●

गाथा– १०७

सम्मत्तं सद्दहणं भावाणं तेसिमधिगमो णाणं।
चारित्तं समभावो विसएसु विरूढमग्गाणं।।१०७।।

(हरिगीत)

नव पदों के श्रद्धान को समकित कहा जिनदेव ने।
वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान अर समभाव ही चारित्र है।।१०७।।

मूलगाथा में आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव ने कहा कि – भावों का अर्थात् नव–पदार्थों का श्रद्धान ही सम्यक्त्व है, उनका अवबोध सम्यग्ज्ञान है तथा विषयों के प्रति वर्तता हुआ समभाव ही चारित्र है।

टीका का आचार्य श्री अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं कि – कालद्रव्य सहित पंचास्तिकाय के भेदरूप नव पदार्थ वास्तव में 'भाव' हैं। उन भावों का श्रद्धान अर्थात् नव पदार्थों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। जोकि सम्यग्दर्शन रूप शुद्ध चैतन्य (आत्मतत्त्व) के दृढ़ निश्चय का बीज है। इन्हीं नवपदार्थों का ही सम्यक् अध्यवसाय, (सत्य समझ, सच्चा अवबोध होना) सम्यग्ज्ञान है। जो कि आत्मज्ञान की उपलब्धि (अनुभूति का) बीज है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के सद्भाव के कारण जो स्वतत्व में दृढ़ हुए हैं, उन्हें इन्द्रिय और मन के विषयभूत पदार्थों के प्रति राग–द्वेषपूर्वक विकार के अभाव के कारण जो निर्विकार ज्ञान स्वभाववाला समभाव होता है, वह चारित्र है। वह चारित्र मोक्ष के निराकुल सुख का बीज है।

ऐसे त्रिलक्षण (सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र) रूप मोक्षमार्ग का निश्चय व व्यवहार से व्याख्यान किया जायेगा।

इसी गाथा के भाव को कवि हीरानन्दजी काव्य में कहते हैं –

(सवैया इकतीसा)

नव तत्त्वविषै आप–पररूप रूपी श्रद्धा,
आप लीक उपादेय सम्यक्दरस है।

तिनही मैं संसै मोह विभ्रम विनास होतैं,
आप–पर जानपना ज्ञान का परस है।।
पररूप परसंग झारि आपविषै लीन,
चंचलता–भाव हीन चारित अरस है।
एई तीन भेद मोख–मारग जिनेस कहे,
विवहार निहचै सौं आतम सरस है।।१०।।

यहाँ कवि हीरानन्दजी कहते हैं कि – जब सम्यग्दर्शन होता है तभी नवतत्त्व की श्रद्धा, स्व–पर का भेदज्ञान होता है तथा दर्शनमोह का नाश होता है। स्व–पर का भेदज्ञान रूप सम्यग्ज्ञान होता है तथा यथासमय चंचलता का अभाव होने से आपरूप में लीनता का होना ही मोक्षमार्ग है – ऐसा जिनदेव ने कहा है।

इसी गाथा पर प्रवचन करते हुए गुरुदेव श्री कानजीस्वामी कहते हैं कि – ''आत्मा शुद्ध चिदानन्द स्वरूप है। उसकी प्रतीति लिए छः द्रव्यादि की प्रतिति रूप व्यवहार समकित है। पंचास्तिकाय में ५५ पृष्ठ में कहा है कि – सूक्ष्मदृष्टि वालों को काल द्रव्य सहित पांच अस्तिकाय को स्वीकार करना चाहिए। तथा नवतत्त्व की श्रद्धा व्यवहार समकित है और शुद्ध चैतन्य स्वभाव को जुदा मानकर अन्तर श्रद्धा करना निश्चय समकित है।

उक्त नव पदार्थों का यथार्थ अनुभव सम्यग्ज्ञान है तथा पाँच इन्द्रियों के विषयों को हठपूर्वक न करके भेद विज्ञानी जीवों की जो राग–द्वेष रहित शांत स्वभाव सम्यक्चारित्र है। जिसे अपने स्वभाव की प्रतीति होती है, उसे ही नवपदार्थों की यथार्थ प्रतीति होती है। वह जीव को जीव तथा जड़ को जड़ जाने, पुण्य–पाप को विकार जाने तथा जो त्रिकाली स्वभाव को शुद्ध जाने उसे ही यथार्थ प्रतीत है।'' ●

गाथा– १०८

जीवाजीवा भावा पुण्णं पावं च आसवं तेसिं।
संवरणं णिज्जरणं बंधो मोक्खो य ते अट्ठा।।१०८।।

(हरिगीत)

फल जीव और अजीव तद्गत पुण्य एवं पाप हैं।
आसरव संवर निर्जरा अर बन्ध मोक्ष पदार्थ हैं।।१०८।।

जीव–अजीव, पुण्य–पाप तथा आस्रव–संवर–निर्जरा–बंध और मोक्ष – ये नौ पदार्थ हैं।

आचार्य अमृतचन्द्र टीका में उक्त नव पदार्थों का नामोल्लेख करते हुए कहते हैं कि – ''चैतन्य जिसका लक्षण है – ऐसा जीवास्तिकाय जीव है। चैतन्य का अभाव जिसका लक्षण है – वे अजीव द्रव्य हैं। पूर्वोक्त अजीव द्रव्य के पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल – ये पाँच भेद हैं। ये दोनों – जीव व अजीव पृथक्–पृथक् अस्तित्व द्वारा निष्पन्न होने से भिन्न स्वभाववाले हैं।

जीव और पुद्गलों के संयोगी परिणाम से उत्पन्न होने वाले सात अन्य पदार्थ हैं। जो इसप्रकार हैं – जीव के शुभपरिणाम तथा वे शुभ–परिणाम जिसमें निमित्त हैं – ऐसे पुद्गलों के शुभकर्मपरिणाम पुण्य है। जीव के अशुभ परिणाम तथा वे अशुभ परिणाम जिनके निमित्त हैं – ऐसे पुद्गलों के कर्मपरिणाम वह पाप है। जीव के मोह–राग–रूप परिणाम भावास्रव हैं तथा वे जिनके निमित्त हैं – ऐसे जो योग द्वारा प्रविष्ट होनेवाले पुद्गलों के कर्म परिणाम द्रव्यआस्रव हैं। जीव के मोह–राग–द्वेषरूप परिणामों का निरोध भावसंवर है तथा वह जिसका निमित्त है – ऐसा जो योग द्वारा प्रविष्ट होनेवाले पुद्गलों के कर्म परिणाम का निरोध द्रव्य संवर है। कर्म की शक्ति को क्षीण करने में समर्थ ऐसा जो बहिरंग और अन्तरंग तपों के द्वारा वृद्धि को प्राप्त जीव का शुद्धोपयोग भावनिर्जरा है तथा उसके प्रभाव से वृद्धि को प्राप्त शुद्धोपयोग के निमित्त से नीरस हुए उपार्जित कर्म पुद्गलों का एकदेश क्षय द्रव्य निर्जरा है।

जीव के मोह–राग–द्वेष रूप परिणाम का निरोध भाव संवर है तथा मोह–राग–द्वेष रूप परिणामों का निरोध जिसका निमित्त है – ऐसा जो योग द्वारा प्रविष्ट होने वाले पुद्गलों के कर्म परिणामों का निरोध द्रव्यास्रव जीव के मोह–राग–द्वेष द्वारा स्निग्ध परिणाम भाव बंध है तथा उनके निमित्त से कर्मरूप परिणमन पुद्गलों का जीव के साथ अन्योन्य अवगाहन द्रव्य बंध है। जीव की अत्यन्त शुद्ध आत्मोपलब्धि भाव मोक्ष है तथा कर्म पुद्गलों का जीव से अत्यन्त विश्लेषण मोक्ष है।

गाथा के भाव को कवि हीरानन्दजी काव्य की भाषा में कहते हैं –

(सवैया इकतीसा)

चेतना सुभाव जीव चेतना अभाव जामै,
सो अजीव पंच भेद श्री जिनेस भाखा है।
जीव के विसुद्ध भाव, कर्म पुद्गलाणु द्रव्य,
संकलेस कर्म पाप दर्व भाव साखा है।।
कर्मद्वार आस्रव औ द्वार रोध संवर है,
एक देस कर्म नास निर्जराभिलासा है।
जीव कर्म एकमेक बंध, सर्वकर्म नास,
मोख का स्वरूप ग्यानी आप मांहि चाखा है।।१४।।

(दोहा)

दर्व भाव दुधभेद हैं नवौं पदारथ माहिं।
दरबभेद पुद्गल विषैं, भाव जीव परछाहिं।।१६।।

इस गाथा के भाव को गुरुदेवश्री कहते हैं कि – 'यदि जीव नवतत्त्वों को यथार्थ जाने तो चैतन्य स्वरूप आत्मा में एकाग्र होकर मुक्ति प्राप्त करता है। आत्मा चैतन्य स्वभावी है, जानना–देखना उसका धर्म है।

जीव (आत्मा) चेतन पदार्थ है। देह से भिन्न केवल ज्ञाता–दृष्टा जीवतत्त्व है। चेतना रहित जड़ पदार्थ अजीव हैं। जो दया, दानादिभावपुण्य हैं, वे आत्मा की पर्याय में होते हैं। उनके निमित्त से जो रजकण बंधते हैं, उन्हें द्रव्यपुण्य कहते हैं। पुण्य–पाप के परिणामों को आस्रव कहते हैं।

शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा अजीव तथा पुण्य–पाप की रुचि छोड़कर जो स्वभाव का भान करता है, वह भाव संवर है। उनके निमित्त से आते हुए कर्मों का रुक जाना द्रव्य संवर है।

आत्मा के आश्रय से शुद्धि में वृद्धि होना भावनिर्जरा है तथा भाव निर्जरा के निमित्त से पूर्वोपार्जित कर्मों का एकदेश क्षय होना द्रव्यनिर्जरा है।

जीव के मोह–राग–द्वेष रूप परिणाम, दयादानादि के परिणाम भाव बंध है। भावबंध का निमित्त पाकर वर्गणाओं का जीव के प्रदेशों के साथ परस्पर एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध होना बंध है। जीव को परिपूर्ण आत्मा स्वभाव की प्राप्ति मोक्ष है। उसमें आत्मा की दशा भाव मोक्ष तथा उनके निमित्त से कर्मों का सर्वथा संबंध छूटना द्रव्यमोक्ष है।

यहाँ जीव के भावों के साथ कर्मों की पर्याय का मात्र निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध कहा है। वस्तुतः दोनों स्वतंत्र हैं।''

इसप्रकार इस गाथा में सात तत्त्व व नवपदार्थों का कथन है। ●

आवास फार्म

आवास फार्म

मोक्षमार्ग प्रकाशक का सार

〈84〉 – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

तेईसवाँ प्रवचन

मोक्षमार्गप्रकाशक का आठवाँ अधिकार चल रहा है। इसमें उपदेश के स्वरूप के अंतर्गत चार अनुयोगों की चर्चा चल रही है। विगत प्रवचनों में अनुयोगों का प्रयोजन, व्याख्यान का विधान, कथनपद्धति और दोष कल्पनाओं का निराकरण आदि विषयों पर चर्चा हुई। अब अनुयोगों में दिखाई देनेवाले विरोध का निराकरण करते हैं।

यद्यपि जिनागम में कहीं भी परस्पर विरुद्ध कथन नहीं होता; तथापि विभिन्न स्थानों पर विभिन्न अपेक्षाओं से विभिन्न कथन होते हैं। जो लोग उक्त अपेक्षाओं को नहीं समझते हैं; उन्हें उक्त कथनों में परस्पर विरोध भासित होता है। इस प्रकरण में उक्त भासित होनेवाले विरोधों का निराकरण करते हैं।

प्रत्येक अनुयोग की अपनी स्वतंत्र कथन शैली है, सभी अनुयोग अपनी-अपनी शैली से ही कथन करते हैं। जो लोग उक्त कथन शैलियों से परिचित नहीं होते, उन्हें परस्पर विरोध भासित होता है।

विभिन्न अनुयोगों में प्राप्त परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले कथनों के सन्दर्भ में पण्डित टोडरमलजी के विचार इसप्रकार हैं –

''प्रथमादि अनुयोगों की आम्नाय के अनुसार जहाँ जिसप्रकार कथन किया हो, वहाँ उसप्रकार जान लेना; अन्य अनुयोग के कथन को अन्य अनुयोग के कथन से अन्यथा जानकर सन्देह नहीं करना।

जैसे – कहीं तो निर्मल सम्यग्दृष्टि के ही शंका, कांक्षा, विचिकित्सा का अभाव कहा; कहीं भय का आठवें गुणस्थान पर्यन्त, लोभ का दसवें पर्यन्त, जुगुप्सा का आठवें पर्यन्त उदय कहा; वहाँ विरुद्ध नहीं जानना।

सम्यग्दृष्टि के श्रद्धानपूर्वक तीव्र शंकादिक का अभाव हुआ है अथवा मुख्यतः सम्यग्दृष्टि शंकादि नहीं करता, उस अपेक्षा चरणानुयोग में सम्यग्दृष्टि के शंकादिक का अभाव कहा है; परन्तु सूक्ष्मशक्ति की अपेक्षा भयादिक का उदय अष्टमादि गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है; इसलिये करणानुयोग में वहाँ तक उनका सद्भाव कहा है। इसीप्रकार अन्यत्र जानना।[१]''

सम्यग्दृष्टि के निशंकित, निकांक्षित,निर्विचिकित्सा आदि आठ अंग होते हैं और उन अंगों के विरोधी शंका, कांक्षा, विचिकित्सा आदि आठ दोष नहीं होते। एक ओर चरणानुयोग में यह कहा गया है और दूसरी ओर करणानुयोग में यह कहते हैं कि भय और जुगुप्सा आठवें गुणस्थान तक और लोभ दसवें गुणस्थान तक रहता है।

ध्यान रहे, शंका को भय, कांक्षा को लोभ और विचिकित्सा को जुगुप्सा भी कहते हैं।

यहाँ विरोध की बात यह है कि जब चौथे गुणस्थान में ही शंका, कांक्षा और विचिकित्सा नहीं होती तो फिर भय, जुगुप्सा आठवें गुणस्थान तक और लोभ दसवें गुणस्थान तक कैसे हो सकते हैं ?

इसका सीधा सच्चा उत्तर यह है कि चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को जिस भय, जुगुप्सा और लोभ का अभाव कहा गया है, वह अनंतानुबंधी संबंधी है और आठवें या दसवें गुणस्थान तक जो भय, जुगुप्सा और लोभ कहे गये हैं, वे संज्वलन संबंधी हैं।

इसलिए उक्त कथनों में कोई विरोध नहीं है।

जिसप्रकार क्रोधादि कषायों में अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानादि भेद पड़ते हैं; उसीप्रकार के भेद हास्य, रति, अरति आदि नोकषायों में भी पड़ सकते हैं। तारतम्य भेद तो अनन्त हो सकते हैं और उनका वर्गीकरण भी अनेकप्रकार से किया जा सकता है।

उक्त कथन में तो विभिन्न अनुयोगों के कथन में दिखाई देनेवाले परस्पर विरोध की बात कही, अब यह कहते हैं कि कभी-कभी एक ही अनुयोग में भी ऐसे कथन प्राप्त हो जाते हैं कि जिनमें परस्पर विरोध प्रतिभासित होता है।

उक्त संदर्भ में पण्डित टोडरमलजी का स्पष्टीकरण इसप्रकार है-

''तथा एक ही अनुयोग में विवक्षावश अनेकरूप कथन करते हैं। जैसे – करणानुयोग में प्रमादों का सातवें गुणस्थान में अभाव कहा, वहाँ कषायादिक प्रमाद के भेद कहे; तथा वहीं कषायादिक का सद्भाव दसवें आदि गुणस्थान पर्यन्त कहा, वहाँ विरुद्ध नहीं जानना, क्योंकि यहाँ प्रमादों में तो जिन शुभाशुभभावों के अभिप्राय सहित कषायादिक होते हैं, उनका ग्रहण है और सातवें गुणस्थान में ऐसा अभिप्राय दूर हुआ है, इसलिए उनका वहाँ अभाव कहा है। तथा सूक्ष्मादि भावों की अपेक्षा उन्हीं का दसवें आदि गुणस्थान पर्यन्त सद्भाव कहा है।

तथा चरणानुयोग में चोरी, परस्त्री आदि सप्तव्यसन का त्याग पहली प्रतिमा में कहा है, तथा वहीं उनका त्याग दूसरी प्रतिमा में कहा है; वहाँ विरुद्ध नहीं जानना, क्योंकि सप्तव्यसन में तो चोरी आदि कार्य ऐसे ग्रहण किये हैं, जिनसे दंडादिक पाता है, लोक में अति निन्दा होती है। तथा व्रतों में ऐसे चोरी आदि त्याग करने योग्य कहे हैं कि जो गृहस्थ धर्म से विरुद्ध होते हैं व किंचित् लोकनिंद्य होते हैं – ऐसा अर्थ जानना।

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, आठवाँ अधिकार, पृष्ठ २९४

इसीप्रकार अन्यत्र जानना।[१]''

पन्द्रह प्रकार के प्रमादों में चार कषाय, चार विकथायें, पाँच इन्द्रिया–धीनता, निद्रा और स्नेह आते हैं। इनके परस्पर मिलान करने से ८० भंग बन जाते हैं। इन्हें ८० प्रकार के प्रमाद भी कहा जाता है।

यहाँ विरोध प्रतिभासित होने का स्वरूप यह है कि जब प्रमादों में कषाय शामिल है तो अप्रमत्त गुणस्थान में कषाय नहीं होना चाहिए; पर बात यह है कि प्रमत्त गुणस्थानवाले प्रमादों में अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान संबंधी कषाय है और **अप्रमत्त गुणस्थानों में दसवें गुणस्थान तक संज्वलन कषाय होती है। इसलिए इस कथन में भी कोई विरोध नहीं है।**

इसीप्रकार चोरी आदि पापों के स्तर में भी बहुत से भेद होते हैं। सात व्यसनों में उसप्रकार की चोरी का निषेध है कि जिसमें राज्य से दण्ड का विधान हो और उसके ऊपर सूक्ष्म चोरी का भी त्याग होता है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि ऊपर से जहाँ विरोध प्रतिभासित होता है, वहाँ गहराई में जाने पर पता चलता है कि इनमें तो कोई विरोध है ही नहीं।

इसप्रकार अबतक विभिन्न अनुयोगों के कथनों में दिखाई देनेवाले विरोध और एक ही अनुयोग में दिखाई देनेवाले विरोधों और उनके निराकरण की चर्चा हुई।

अब अनेकप्रकार के भावों की अपेक्षा एक भाव का अन्य–अन्य प्रकार से निरूपण करने में दिखाई देनेवाले विरोध और उक्त विरोध का निराकरण करते हैं।

उक्त संदर्भ में टोडरमलजी का स्पष्टीकरण इसप्रकार है –

''तथा नाना भावों की सापेक्षता से एक ही भाव का अन्य–अन्य प्रकार से निरूपण करते हैं। जैसे – कहीं तो महाव्रतादिक को चारित्र के भेद कहा, कहीं महाव्रतादि होने पर भी द्रव्यलिंगी को असंयमी कहा, वहाँ विरुद्ध नहीं जानना; क्योंकि सम्यग्ज्ञान सहित महाव्रतादिक तो चारित्र हैं और अज्ञानपूर्वक व्रतादिक होने पर भी असंयमी ही है।

तथा जिसप्रकार पाँच मिथ्यात्वों में भी विनय कहा है और बारह प्रकार के तपों में भी विनय कहा है वहाँ विरुद्ध नहीं जानना; क्योंकि जो विनय करने योग्य नहीं हैं, उनकी भी विनय करके धर्म मानना; वह तो विनय मिथ्यात्व है और धर्मपद्धति से जो विनय करने योग्य हैं, उनकी यथायोग्य विनय करना सो विनय तप है।

तथा जिसप्रकार कहीं तो अभिमान की निन्दा की, और कहीं प्रशंसा की, वहाँ विरुद्ध नहीं जानना; क्योंकि मान कषाय से अपने को ऊँचा मनवाने के अर्थ विनयादि न करे, वह अभिमान तो निंद्य ही है; और निर्लोभपने से दीनता आदि न करे, वह अभिमान प्रशंसा योग्य है।

तथा जैसे कहीं चतुराई की निन्दा की, कहीं प्रशंसा की, वहाँ विरुद्ध नहीं जानना; क्योंकि माया कषाय से किसी को ठगने के अर्थ चतुराई करें, वह तो निंद्य ही है और विवेक सहित यथासम्भव कार्य करने में जो चतुराई हो, वह श्लाघ्य ही है। इसीप्रकार अन्यत्र जानना।[२]''

यहाँ चार प्रकार के उदाहरणों के माध्यम से यह बात सिद्ध की गई है कि **एक ही भाव किसी अपेक्षा अच्छा और किसी अपेक्षा बुरा भी हो सकता है।**

तीन कषाय के अभाववाले सम्यग्दृष्टि मुनिराजों को छठवें गुणस्थान में होनेवाले शुभभावरूप और शुभक्रियारूप अहिंसादि पाँच महाव्रतों को संयम (चारित्र) कहा जाता है; तथापि **शुभभाव व शुभक्रियारूप अहिंसादि पंच महाव्रत होने पर भी प्रथम गुणस्थानवाले द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि मुनि असंयमी ही हैं।**

इसीप्रकार विनय तो एक ही है, किन्तु जब सम्यग्दर्शन–ज्ञान सहित कोई महाव्रती विनय करने योग्य भावों या देव–गुरु–धर्म आदि की विनय करते हैं, तब वह विनय तप कहलाती है; लेकिन जब कोई मिथ्यादृष्टि कुदेवों या कुगुरुओं की विनय करता है, तो वह विनय मिथ्यात्व कहा जाता है।

ऐसे ही अभिमान और चतुराई के संबंध में भी समझना चाहिए।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि एक ही भाव की कभी प्रशंसा करते हैं और कभी निंदा – ऐसा क्यों होता है ?

अरे, भाई ! शुभभाव, अशुभभाव की अपेक्षा अच्छे हैं; इसलिए उन्हें अच्छा कहा जाता है; पर जब उन्हीं शुभभावों की शुद्धभाव से तुलना की जाती है तो उन्हें हीन बताया जाता है; क्योंकि वे शुद्धभावों से हीन ही हैं।

इसप्रकार हम देखते हैं कि हमें **जो परस्पर विरुद्ध कथन दिखाई देते हैं, वे सब अपेक्षा न समझने के कारण ही दिखाई देते हैं।** यदि अपेक्षा लगाकर बात को समझने की कोशिश करेंगे तो सबकुछ समझ में आ जावेगा। **(क्रमशः)**

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, आठवाँ अधिकार, पृष्ठ २९५ २. वही, पृष्ठ २९५

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

6 से 11 दिसम्बर	दाहोद (गुज.)	पंचकल्याणक
19 से 25 जनवरी 2012	राघौगढ (म.प्र.)	पंचकल्याणक
30 जन. से 5 फरवरी	अजमेर (राज.)	पंचकल्याणक
21 से 27 फरवरी	जयपुर (राज.)	पंचकल्याणक